आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 6/अंक 3/सितंबर 2026
Received: 15/10/2026; Published: 28/10/2026

कविता

बेचैनियाँ

- प्रतिभा मुदलियार

प्रतिभा मुदलियार , बेचैनियाँ , आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 6/अंक 3/सितंबर 2026,** (372-375)

https://doi.org/10.5281/zenodo.23926627

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

कोई कहानी हो
या कोई कविता
बेचैनियाँ जगाती हैं,
और बेतरतीब
कुछ भी
उतना ही।
टेबल पर पड़ा
अस्त-व्यस्त टेबल क्लॉथ,
या किसी वाक्य का

अधूरा ठहराव

सब भीतर

आकर ठहर जाता है।

और वहीं से

उगती हैं बेचैनियाँ।

ये बेचैनियाँ

रुकती नहीं

मन से मस्तिष्क,

और मस्तिष्क से

रक्त, मांस, कोशिकाओं तक

फैल जाती हैं।

जैसे मैं नहीं,

मेरे भीतर

सिर्फ बेचैनियाँ बसती हों।

मैं समेटना चाहती हूँ

हर बिखराव

पर जितना समेटती हूँ,

उतनी ही बढ़ जाती हैं

ये बेचैनियाँ।

और अंत में

सब कुछ वैसा ही रह जाता है

सिवाय इसके

कि मैं

पूरी की पूरी

इन बेचैनियों से भर जाती हूँ।

****

बेचैनियाँ-2

चाहा था
कि कोई रिश्ता
रिक्त जगहों को भर देगा,
टूटी हुई आवाज़ों को
स्वर दे देगा।
सोचा था
प्रेम शायद वह घर है
जहाँ आत्मा थककर लौटे
और बिना कुछ कहे
स्वीकार कर ली जाए।
इसी चाह में
हाथों की लकीरों तक
दूसरों के नाम कर दी गईं।
धूप,नींद,चुप्पियाँ
सब बाँटी जाती रहीं।
हर बार लगा
अब पूर्णाता मिलेगी,
अबकी बार
अधूरी पंक्तियाँ
अंत तक पढ़ ली जाएँगी।
पर हुआ यह कि हर रिश्ते ने
थोड़ा-थोड़ा तोड़ा,

और बदले में

एक नया खालीपन दिया।

आईना बना रहा मन,

लोग अपना चेहरा देखते रहे।

नदी बना रहा हृदय,

लोग प्यास बुझाकर चले गए।

और अंत में

जब भीतर झाँका,

तो अधूरापन

अब भी शेष ही था।

पर शायद

यही सत्य है कि

मनुष्य किसी और से नहीं,

अपने भीतर लौटकर पूरा होता है।

अब रिश्तों में

पूर्ण होने की आकांक्षा नहीं,

बस सच बचाए रखने की कोशिश है जारी।

क्योंकि पूर्णता का स्वप्न

बहुत सुंदर था,

पर उसने

बार-बार टूटना सिखाया।

****